प्राक्कथन

भारतीय हिन्दी- साहित्याकाश में अनेक प्रभासूर्य अपनी काव्य -किरणें विकीर्ण करते रहे हैं। हिन्दी - साहित्य का आधुनिक काव्य- युग तो अपनी गरिमा मंडित उपलब्धियों तथा शिल्प के नये आयामों के संधान का साक्षी है। भारतेन्दु से लेकर अद्यावधि अनेक वर्चस्वी व प्रभविष्णु कवियों ने अपनी हिन्दी काव्य- मंदाकिनी को विस्तार एवं व्याप्ति देने के साथ-साथ जन- मानस तक पहुंचाकर उसे आर्द्र और रस- परिप्लुत बनाया है। जिसके लिए हिन्दी-साहित्य गौरवान्वित है। आधुनिक युग का काव्य न तो वर्ग - विशेष की फरमाइश करने के उद्देश्य से उद्भूत हुआ है और न समाज के सीमित अभिजात्य- वर्ग अथवा न तो शासनकर्ता की रुचि को परितोष देने के लिए ही सर्जित हुआ है। वह तो युग के जन-जीवन के सभी वर्गों एवं पक्षों की धड़कनों को प्रतिध्वनित करता तथा नयी चेतना राशि से उसे संयुक्त करता, उसकी आशा- आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ उन्हें प्रेरित एवं अनुप्राणित करता आया है, मानो शिव के जटाजूट से अवतरित यह भागीरथी जह्नु की सीमाओं को तोड़कर जीवन के समतल में प्रवाहित होकर आज जन-जन तक पहुंच चुकी है, किन्तु यह अनायास ही नहीं हो सका। यह दिनकर जैसे अनेक भगीरथों की प्रतिभा एवं सतत साधना का ही प्रतिफलन कहा जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्य पर यदि आधुनिक काल की विकास-परंपरा के सम्बंध में विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी कवियों ने हिन्दी कविता में जिस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जीवन दृष्टि का सूत्रपात किया था, उसे सुदृढ़ आधार द्विवेदी-युग में प्राप्त हुआ। छायावाद- युग में प्रेम

और सौन्दर्य की काव्य-धारा के परिपार्श्व में राष्ट्रीय- सांस्कृतिक काव्यधारा उतनी ही गति एवं शैलीगत औदात्य के साथ प्रवहमान रही । स्वयं उसके प्रवर्तक बाबू जयशंकर प्रसाद तथा निराला प्रभृति काव्य-कलाधरों ने उक्त सांस्कृतिक उन्मेष को कलागत चेतना से समायोजित किया । प्रगतिवादी आन्दोलन एक आन्दोलन के रूप में वाद- विशेष से संचालित रहा हो किन्तु उपरि-निर्दिष्ट राष्ट्रीय - सांस्कृतिक धारा ने उसके जनवादी तत्व को आत्मसात करके उसे अधिक प्रभावशाली और युगानुरूप बनाया । देश में पहले से चले आ रहे सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन तथा क्रांतिकारी प्रयास आकर जुड़ गये और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी कविता इन अनेक चेतना-बिन्दुओं से जीवनदायी बूंदें ग्रहण कर रस का संचार करती रही । इस दृष्टिकोण से छाया-वादोत्तर युग का अप्रतिम महत्त्व है । और उसकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है - युगचारण रामधारी सिंह दिनकर, छायावादी प्रवृत्ति जो प्रकृति की ओर विशेष-कर झुकी हुई थी, के प्रति उनकी निजी प्रतिक्रिया को निम्नलिखित पंक्तियों में लक्ष्य किया जा सकता है -

सुनूं क्या सिन्धु । गर्जन मैं तुम्हारा ?
स्वयं युग धर्म की हुंकार हूं मैं
कठिन निर्घोष हूं भीषण अशनि का,
प्रलय-गाण्डीव की टंकार हूं मैं ।

छायावाद तथा छायावादोत्तर हिन्दी कविता में तीसरे दशक से लेकर सातवें दशक से कुछ आगे तक की एक लम्बी काव्य-यात्रा को दिनकर जी ने पार

किया है । इस काव्य-यात्रा के अनेक सुन्दर पड़ाव भी हैं और कड़वे -मीठे अनुभव भी । यद्यपि दिनकर जी को राष्ट्रीय कवि कहा जाता रहा है तथापि सुधीजन उन्हें संस्कृति का आख्याता भी मानते हैं । उनकी पुस्तक `संस्कृति के चार अध्याय` ग्रंथ उनके विशद ज्ञान, इतिहास- बोध तथा भारतीय संस्कृति की जीवन दृष्टि का साक्ष्य उपस्थित करता है, जिसमें भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को सूक्ष्म व परिमंडित रूप में उजागर किया गया है । सांस्कृतिक आख्याता के इस महत्त्वपूर्ण पक्ष को समझे बिना उनके काव्य के साथ समुचित न्याय नहीं किया जा सकता । केवल युगीन परिवेश के सन्दर्भ में उनकी रचनाओं का अनुशीलन एक प्रकार से अधूरा हो सकता है, क्योंकि कवि संवेदनशील होने के साथ-साथ चिन्तक भी होता है । राष्ट्रीय तथा सामाजिक सन्दर्भों की कविताओं में वे शायद ही सांस्कृतिक परम्परा को विस्मृत कर पाये हों ।

आलोच्य कवि दिनकर पर लगभग छह-सात, शोध-उपाधिपरक अध्ययन हो चुके हैं । इनमें डा० सुनीति, डा० शेखर जैन, डा० निधि भार्गव द्वारा प्रस्तुत अध्ययन निश्चित शब्दावली के परिवर्तन के साथ कवि की राष्ट्रीय भावना के अनुशीलन से सम्बंधित हैं । इनके अतिरिक्त डा० यतीन्द्र तिवारी ने इनकी भाषा पर डा० प्रतिमा जैन ने उनके कला और दर्शन पर तथा डा० शारदा जौहरी ने उनके अभिव्यक्ति पक्ष पर विवेचन प्रस्तुत किये हैं । इन विवेचनों की अपनी उपलब्धियां और सीमाएं भी हैं । इनके अतिरिक्त डा० सावित्री सिन्हा, डा० विजेन्द्रनारायण सिंह के स्वतंत्र अध्ययन भी युगीन सन्दर्भों को उजागर करने वाले हैं, किन्तु ये भी प्राय: राष्ट्रीय भावना को सन्दर्भित करते हैं । लेखिका का नम्र सुझाव है कि केवल युगगत राष्ट्रीय चेतना में आबद्ध करके दिनकर के काव्य का मूल्यांकन कुछ अछूते अध्ययन

पक्षों की ओर दिशा निर्देश करता है और जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका है कि किस विशेषता के कारण ऐसे अध्ययन एकपक्षीय कहे जा सकते हैं। संभवत: इसका एक कारण यह भी रहा हो कि उनके केवल कवि रूप को ही ध्यान में रखा हो और उनके व्यक्तित्व के इतर किन्तु महत्त्वपूर्ण पक्ष उनकी दृष्टि से ओझल हो गये हों। उनके साहित्य पर समग्रतया विचार करने पर वे भारत की सांस्कृतिक धारा, भारतीय इतिहास तथा आधुनिक सन्दर्भों के प्रति सांस्कृतिक दृष्टि रखने वाले मनीषी के रूप में प्रकाश में आते हैं। युगीन चेतना, राजनीतिक घटना तथा राष्ट्रीय भावना से सम्बंधित प्राय: सभी कविताओं में वे उपर्युक्त सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टि तथा इतिहास- बोध से पृथक नहीं किये जा सकते। अत: कवि की अन्त:सलिला की ओर दृष्टिक्षेप किये बिना या मूल्यांकन में इसे महत्त्व दिये बिना उनकी बहिर्वर्ती काव्य-सलिला का अवगाहन मात्र हमें अनेक अमूल्य भाव और विचार रत्नों से वंचित कर सकता है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन का विषय 'दिनकर के काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन' रखा गया है। जिसके साथ लेखिका का नम्र अनुरोध है कि उसका यह संकल्प उपर्युक्त अभाव की पूर्ति को दृष्टिपथ में रखकर है।

उपर्युक्त अध्ययन दृष्टियों को ध्यान में रखकर विवेचनगत सुविधा के विचार से प्रस्तुत अनुशीलन को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है - प्रथम अध्याय 'दिनकर की भारतीय संस्कृति विषयक अवधारणा' के अनुशीलन का है, जिसके अन्तर्गत उनके एतद्विषयक विचारों का अनुशीलन एवं विश्लेषण किया गया है। प्रारम्भ में संस्कृति की व्याख्या, सभ्यता

व संस्कृति का अन्तर स्पष्ट करते हुए दिनकर की भारतीय संस्कृति विषयक अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास है । वे भारतीय संस्कृति को विभिन्न रसायनों से तैयार किया हुआ एक ऐसा रसायन कहते हैं, जिसमें समन्वय की तीव्र शक्ति है । इसीलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति के इतिहास को चार काल-खण्डों में विभाजित किया है । ~~इन चारों काल खण्डों में विभाजित किया है ।~~ ~~इन-चारों~~ इन चारों काल खण्डों में दिनकर जी की मान्यताओं का मूल्यांकन एतद्विषयक ऐतिहासिक विवेचनों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है । इस परीक्षण में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि दिनकर का एतद् सम्बंधी विवेचन कहाँ तक प्रामाणिक है और किन तथ्यों के प्रकाशन में उनके वक्तव्य एकांगी और तथ्यहीन कहे जा सकते हैं । उदाहरणार्थ सामासिक संस्कृति तथा इस्लाम के क्षिप्र प्रसार में ब्राह्मणों के अत्याचारों को सहायक मानना और बलात् धर्म परिवर्तन के तथ्य की उपेक्षा विषयक अवधारणाओं की ऐतिहासिक वस्तुस्थिति की कसौटी पर स्वीकार या अस्वीकार किया गया है । इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय के विवेचन द्वारा दिनकर के इतिहास बोध तथा सांस्कृतिक अवधारणा को यथासम्भव समझने का प्रयास करते हुए अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि वे कुछ सीमाओं के बावजूद भी भारतीय संस्कृति के गंभीर एवं प्रामाणिक विवेचक हैं । द्वितीयत: उनकी सामासिक संस्कृति की अवधारणा स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक अवधारणा के आग्रह से प्रभावित कही जा सकती है । इस अध्ययन में सम्बंधित विवेचन से सहायता ली गयी है किन्तु विश्लेषण तथा तथ्यान्वेषण द्वारा नये तथ्यों को प्रकाशित करने तथा उनकी नयी व्याख्या देने का प्रयास लेखिका का अपना निजी है ।

द्वितीय अध्याय में इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आधार-भूमि पर सर्वप्रथम

विचार किया गया है । देश में सन् १८२८ से लेकर सन् १६२० तक कई ऐसे सांस्कृतिक जागरण के पुरस्कर्ता हुए हैं । जिन्होंने भारतीय संस्कृति की मन्दाकिनी की शाश्वत धारा के अवरुद्ध मार्ग को स्वच्छ करने का प्रयास किया । इसके लिए राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, एनीबेसेन्ट, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी तथा अरविन्द घोष आदि के योगदान का काल-क्रमानुसार विवेचन करके सांस्कृतिक युग-चेतना के परिशीलन का प्रयास किया गया है । लेखिका ने इस सांस्कृतिक चेतना पर विस्तार से विचार करते हुए हिन्दी कविता की आधुनिक राष्ट्रीय और समाज सुधार की भावना को उससे जोड़ने का प्रयास किया है । कवि दिनकर की भावधारा इसी आधार भूमि पर प्रतिष्ठित हुई है । प्रस्तुत विवेचन के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया है कि भारतेन्दु-युग से लेकर छायावाद-युग की कविता ने उक्त सांस्कृतिक जागरण के तत्वों को आत्मसात् किया है और इस कारण दिनकर के काव्य को उसके परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है ।

तृतीय अध्याय में आधुनिक हिन्दी कविता में सांस्कृतिक चेतना की अभि-व्यक्ति का विवेचन है । यह अनुशीलन अपने आप में एक स्वतंत्र एवं विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखता है किन्तु शोध प्रबन्ध की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि आधुनिक हिन्दी कविता में सांस्कृतिक चेतना की अभि-व्यक्ति के उसी पक्ष पर विशेष रूप से विचार किया जाय, जिसे दिनकर के काव्य की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है । दिनकर की काव्य-यात्रा से पूर्व आधुनिक हिन्दी-कविता में तीन महत्त्वपूर्ण युग रहे हैं - भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा छायावाद युग । इसमें प्रत्येक युग के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक तथ्यों को ध्यान में रखकर ही यह विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु युग में जिस राष्ट्रीयता का सूत्रपात हुआ था,

वह कालान्तर में विकसित एवं परिष्कृत होती हुई दिनकर की कविता का साध्य बनी। इन तीनों युगों के काव्य में वही तत्व प्रमुख रूप से पाये जाते हैं, जिनकी नींव सांस्कृतिक पुनर्जागरण के नेताओं ने रखी थी। संक्षेप में ये प्रमुख तत्व हैं - सामाजिक सुधार व मानववादी दृष्टिकोण, नारी-जागरण, राष्ट्रीय चेतना, भारत-भूमि के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध, आर्थिक शोषण, अतीत के प्रति गौरव भावना, सांस्कृतिक पुनरुत्थान, इतिहास अवबोध तथा स्वभाषा प्रेम। इन तीनों युगों में अन्तर केवल इतना है कि भारतेन्दु में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का स्वर प्रमुख न होकर सुधारवादी रहा। द्विवेदी युग में सामाजिक सुधार तथा विदेशी शासन से मुक्ति का व्यापक संकल्प प्रकाश में आया तथा छायावाद युग में अतीत की समृद्ध निधि का उद्बोधन करते हुए उसकी सुदृढ़ नींव पर राष्ट्रीय-संस्कृति की प्रतिष्ठा हुई। यहीं से दिनकर का युग आरंभ होता है। इस अध्याय के विवेचन में उपर्युक्त निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए तीनों युगों की नव-जागरण से सम्बद्ध कविताओं की सामग्री का संकलन करके यथासम्भव मौलिक व्याख्या द्वारा उसकी सांस्कृतिक चेतना के विकास-क्रम को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसकी आधार भूत सामग्री उपर्युक्त युग की प्रतिनिधि हिन्दी रचनाओं से ली गयी है किन्तु उसका व्यवस्थापन, विवेचन तथा निष्कर्षण अनु-संधानकर्त्री का अपना निजी है।

चतुर्थ अध्याय में दिनकर की समस्त काव्य-कृतियों का सांस्कृतिक अध्ययन के दृष्टिकोण से परिचय दिया गया है। उनकी प्रारंभिक रचना प्रणभंग से लेकर उनके काव्य-संग्रह रश्मिलोक तक विहंगावलोकन करने का मेरा लघु प्रयास रहा है। इस अनुशीलन से यह तथ्य सामने आता है कि उनकी कविता की मूल चेतना राष्ट्रीयता

है तथा उसमें अपने युग के प्रति प्रबुद्ध अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न पूर्ण सजगता है । अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य-धारा के कवियों से प्रेरणा ग्रहण करने के साथ वैचारिक भूमियों में संचरण करती हुई उनकी काव्य चेतना संस्कृति के अनेक आयामों को भी सन्निविष्ट करती आयी है । रसवन्ती और उर्वशी जैसी काव्य-कृतियों में एक ओर छायावादी प्रेम तथा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर हुंकार, रेणुका, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, बापू, इतिहास के आँसू, धूप और धुँआ, दिल्ली, नीम के पत्ते, नीलकुसुम जैसी कृतियों में युगीन सामाजिक सांस्कृतिक चेतना, युग-बोध तथा जन- मानस के प्रति गहरी संवेदना के स्वर मुखरित हुए हैं । इसी प्रकार परशुराम की प्रतीक्षा, रश्मिरथी और कुरुक्षेत्र जैसी कृतियों में व्यक्तिगत अन्तर्द्वन्द्व उठाकर पौराणिक सन्दर्भों के सहारे युगीन प्रश्नों को उजागर किया गया है । अत: समग्रतया अध्ययन के परिणाम स्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया है कि उनका काव्य व्यापक मानवीय चेतना की भारतीय संस्कृति की अवधारणा से अनुस्यूत है ।

पंचम् अध्याय में उनके काव्य के माध्यम से 'सामाजिक व आर्थिक चेतना की अभिव्यक्ति' को प्रस्तुत किया गया है । दिनकर के काव्य में देश की तत्कालीन परिस्थिति एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण है । कृषकों एवं श्रमिकों की दयनीय स्थिति एवं विवशता, सामाजिक विषमता, छूताछूत की भावना, विदेशी शासन के अत्याचार से उत्पन्न आर्थिक वैषम्य की अभिव्यक्ति जो उन्होंने की है। इस अध्याय में उसे ही समेटने का प्रयास किया गया है । उनका कवि हृदय इन विषमताओं के लिए किस तरह रोता-कलपता है तथा समाधान प्रस्तुत करता है इस पर यथास्थान विचार किया गया है । इसी की प्रतिक्रिया के कारण यह स्वर उनका कहीं-कहीं क्रांतिकारी हो उठता है । सम-सामयिक युगबोध उनकी कविता की मुख्य अभिव्यक्ति

देशवासियों की दुर्दशा, अभिजात व दलित का अन्तर उनकी कविता में इस प्रकार व्यक्त हुआ है, मानो कवि इस सामाजिक विभीषिका का स्वयं शिकार हो, किन्तु वस्तुस्थिति संभवत: यह है कि उसने इन विभीषिका-पूर्ण जीवन पक्षों को संवेदनशील अन्तर्चक्षुओं से देखा है और अनुभूति के स्तर पर वह समभागी बनना चाहता है। कवि ने स्वयं को युग का चारण या वैतालिक माना भी है। यही कल्याणकारी भावना हमारी संस्कृति की निधि है।

इसी का विवेचन इस अध्याय का प्रतिपाद्य है तथा तथ्यों का अन्वेषण लेखिका का निजी प्रयास। इस प्रयास द्वारा लेखिका का निष्कर्ष यह है कि दिनकर जन-साधारण के कवि हैं। किसान-मजदूर तथा उस भारतीय दीन-हीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भारतवासी हैं, जिनके लिए वे कविता करते हैं, क्रोध व्यक्त करते हैं तथा अन्त में उनके समाधान के शोध में लग जाते हैं।

षष्ठ अध्याय 'दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय व राजनीतिक चेतना' के अध्ययन से सम्बंधित है। दिनकर की काव्य-यात्रा उन दिनों आरम्भ होती है, जब राष्ट्रीय आन्दोलनों की हलचल राजनीतिक रूप ग्रहण कर चुकी थी और जिनमें सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों के स्थान पर आर्थिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता पर अधिक बल दिया जा रहा था। दूसरी ओर आतंकवादी प्रयास भी बलिदानों की परम्परा के कारण जन-मानस को प्रभावित कर रहे थे। स्वातंत्र्योत्तर काल में भी नव निर्माण, ग्रामोत्थान, स्थानीय स्वराज्य की सम्यक् प्रतिष्ठा तथा आगे चलकर चीनी आक्रमण के राजनीतिक पक्ष उसके दृष्टिपथ में विद्यमान रहे। कवि दिनकर

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में इसके भावना और विचार पक्ष से जुड़े रहे। उन्होंने ऐसे सम-सामयिक पक्षों पर लेखनी उठायी है और अनेक कविताओं में राजनीतिक सन्दर्भों को ओजस्वी वाणी के माध्यम से प्रस्तुत भी किया है, किन्तु दूसरी ओर यह उल्लेखनीय है कि उनकी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक चेतना से आच्छादित है और मुख्यतया संस्कृति से ही प्रेरणा ग्रहण करती है। सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था, प्रगति की कामना, पतितों के प्रति सहानुभूति ये दिनकर की राष्ट्रीयता के पक्ष हैं और दूसरी ओर वे समकालीन राजनीतिक परिवेश से जुड़े हुए भी हैं। यह तो सर्वविदित तथ्य है कि उनकी सामाजिक रचना हो या राष्ट्रीय चेतना, वह इतिहास परम्परा से अवश्य जुड़ी रहती है। इसलिए राष्ट्रीय चेतना की समस्त प्रेरणा अतीत से ली गयी है और इसे हम संस्कृति से संगुम्फित कह सकते हैं। अतः यह विशेषता उन्हें सांस्कृतिक काव्य के प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित करती है। इन निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए लेखिका ने उनकी एतद् विषयक काव्य- सामग्री का तुलनात्मक दृष्टिकोण से अनुशीलन एवं आख्यान किया है और उसके द्वारा नये तथ्यों एवं निष्कर्षों पर पहुंचने का उसने प्रयास भी किया है।

सप्तम् अध्याय के अन्तर्गत दिनकर के काव्य में अभिव्यक्त जीवन-दर्शन तथा इतर सांस्कृतिक पक्ष पर विचार किया है। यह द्रष्टव्य है कि उनके काव्य में जीवन-दर्शन को छोड़कर अन्य सांस्कृतिक इतर-पक्षों की अभिव्यक्ति अत्यल्प मात्रा में हुई है। भले ही ये पक्ष उनकी मूल चेतना के प्रधान पक्ष न रहे हों, किन्तु अध्ययन की पूर्णता के लिए इन पक्षों का विवेचन आवश्यक समझा गया है। दिनकर के काव्य में अभिव्यक्त विभिन्न जीवन-दर्शनों पर संक्षिप्त चर्चा की गयी है। इसमें

अध्यात्म सम्बंधी उनके दर्शन के अंतर्गत कामाध्यात्म की भी प्रसंगानुसार चर्चा की गयी है, जो अनेक विवेचकों के बीच विवाद का भी विषय रहा है। लेखिका ने सांस्कृतिक अवधारणा तथा भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण से इस तथ्य का परीक्षण करते हुए नये निष्कर्षों तक पहुंचने का एक सीमित प्रयास किया गया है। संस्कृति के इतर पक्षों पर दृष्टि निक्षेपण करते हुए उनके काव्य में व्यक्त जीवन- मूल्यों पर भी संक्षिप्त चर्चा की गयी है। सम-सामयिक जीवन- मूल्यों की दृष्टि से दिनकर के काव्य में कुछ अधिक साक्ष्य मिलते हैं, जिनमें ऐतिहासिक अवबोध है, किन्तु यह ऐतिहासिक अवबोध जीवन की यथार्थता को आवृत नहीं करता, अपितु सम-सामयिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस प्रकार इस अध्याय का अनुशीलन करके इन निष्कर्षों पर पहुंचने का लेखिका का विनम्र प्रयास है कि जिस सांस्कृतिक पुनर्जागरण से दिनकर ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ किया होगा, उस जागरण को वे अपने निजी चिन्तन तथा सामाजिक दृष्टि से नया मोड़ देने का प्रयास करते हैं।

अन्त में उपसंहार के अंतर्गत दिनकर के एतद्विषयक प्रदेय और उनके काव्य के सांस्कृतिक अध्ययन से प्राप्त उपलब्धियों का समग्रतया मूल्यांकन किया गया है। इस अध्ययन द्वारा लेखिका का विश्वास है कि भविष्य में इस अध्ययन पक्ष को लेकर व्यापक काव्य चेतना वाले कवि-मनीषियों से सम्बद्ध सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

दिनकर हिन्दी काव्य में प्रभामय विराट सूर्य के समान हैं। उनके काव्य का समग्रतया आकलन एक व्यापक प्रतिभा तथा अध्ययनगत पृष्ठभूमि वाले विद्वान के लिए

संभव है। यह प्रबन्ध लिखकर लेखिका यदि एक-आध किरण को भी आकलित कर पायी हो तो वह अपना प्रयास सफल समझेगी । उसकी अपनी सीमित क्षमताएं हैं । इन सीमाओं तथा उपर्युक्त तथ्य को जानते हुए भी लेखिका ने यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । गुरुजनों के आशीष तथा अन्तर्मन की पुकार ने ही मुझे सदैव सम्बल प्रदान किया- अभिव्यक्ति की समग्र शक्ति उन्हीं की है, जो कुछ दोष और त्रुटियां सहज सम्भाव्य हैं वही कुछ मेरा अपना है । संभवतः इस प्रयास में अकिंचना भी सफल नहीं हो पाती यदि उसे पूज्य गुरुवर डा० मदनगोपाल गुप्त का पग-पग पर मार्गदर्शन, प्रोत्साहन तथा प्रेरणा न प्राप्त हुई होती। उनके ही द्वारा ज्ञान-राशि को इस रूप में प्रस्तुत करके किन भावों से मैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करूं, यही एक प्रश्नवाचक चिह्न है । अगाध ज्ञान-राशि के अनेक साधक विद्वानों के विवेचनों का यथास्थान उपयोग करके लेखिका उनके प्रति ऋणी है । विभाग के अनेक विद्वान गुरुजनों, साथ-साथ कार्यशील बहनों ने इस कार्य को सुकर बनाया है । विश्वविद्यालय के वरिष्ठ अधिकारियों तथा उसकी व्यवस्था से सम्बंधित अनेक आप्तजन कर्मचारियों ने व्यवस्था आदि में मेरी जो सहायता की है। उसका स्मरण सहसा हो आता है । विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के निर्बाध उपयोग की सुविधा के लिए लेखिका पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करती है । अन्त में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन लेखिका का पावन कर्तव्य हो जाता है, जिसकी आर्थिक सहायता के कारण यह कार्य अधिक सुविधा, तत्परता एवं निश्चिन्तता के साथ पूरा हो रहा है ।

विनीत,

उमा नेगी

(उमा नेगी)